7

हम न किसी के

हम न किसी के कोई न हमारा, झूठा है जगका ब्योहारा...
तन सम्बन्धी सब परिवारा, सो तन हमने जाना न्यारा ।।
हम न किसी के ..... ।।

पुन्य उदय सुखका बढ़वारा, पाप उदय दुःख होत अपारा ।
पाप पुन्य दोऊ संसारा, मैं सब देखन जानन हारा ।।१।।

मैं तिहुँ जग तिहुँ काल अकेला, पर संजोग भया बहु मेला ।
थिति पूरी करि खिर खिर जांहीं, मेरे हर्ष शोक कछु नाहीं ।।२।।

राग भावतैं सज्जन मानैं, दोष भावतैं दुर्जन जानैं ।
राग दोष दोऊ मम नाहीं, 'द्यानत' मैं चेतनपदमाहीं ।।३।।

हे जीव! हम न तो किसी के हैं और न ही कोई हमारा है। जग में जो भी अपना–पर का व्यवहार प्रचलित है वह नितान्त झूठा है, अस्थिर है। यह सब परिवारजन तो इस शरीर मात्र से ही सम्बन्धित है अत: हमने यह तन भी हमसे न्यारा है, भिन्न है ऐसा जान लिया है।

पुण्य के उदय में सुख की वृद्धि होती है और पाप उदय में अपार दु:ख उत्पन्न होता है। लेकिन वास्तव में पाप और पुण्य ये दोनों ही संसार का कारण हैं, मैं तो इन सबका ज्ञाता–दृष्टा मात्र हूँ।

मैं तीनों लोक में और तीनों काल में सदा अकेला ही हूँ। परद्रव्य के संयोग के कारण यह परिवारजन का मेला मिल गया है। लेकिन जैसे–जैसे इनकी स्थिति पूरी होती जाती है, ये सभी संयोग विघटित होते जाते हैं, खत्म होते जाते हैं इसलिये इन संयोगों के प्रति न मुझे हर्ष है और न ही कोई शोक है।

यह जीव राग भाव के कारण अन्य जीवों को सज्जन और द्वेष भाव के कारण अन्य जीवों को दुर्जन जानता है। परन्तु द्यानतरायजी कहते हैं कि राग और द्वेष ये दोनों भाव मेरे नहीं हैं। मेरा तो एकमात्र यह चेतनपद ही है, जो इन दोनों परिणामों से भिन्न है।